भाग-1

विज्ञान और प्रयोग

सुशील जोशी

चित्र: कैरन हैडॉक

प्रयोग बिना कैसा विज्ञान? लेकिन विज्ञान में प्रयोगों की भूमिका आखिर क्या है - इस पर आधारित है चार भागों का यह आलेख। पहले भाग में विज्ञान के मकसद, अवलोकन व अन्य प्रयोगों की भूमिकाएँ व वैकल्पिक सिद्धान्तों के बीच फैसला कैसे किया जा सकता है – ये सब विभिन्न उदाहरणों के साथ। करके देखने के लिए पाठकों के लिए गतिविधियाँ भी हैं।

विज्ञान के बारे में सोचते ही प्रयोग और प्रयोगशाला की बात मन में आती है। वैज्ञानिक लोग आम तौर पर प्रयोग करते दिखाए जाते हैं। विज्ञान के इतिहास में भी प्रयोगों की खूब बातें होती हैं। कई लोग तो प्रयोगों को विज्ञान की विधि का अभिन्न अंग मानते हैं। ऐसा लगता है कि विज्ञान और प्रयोगों का चोली-दामन का साथ है। सवाल है कि यह बात कितनी सही है और यदि सही है तो विज्ञान में प्रयोगों का क्या स्थान है और क्या भूमिका है?

- क्या आपने कोई प्रयोग किया है (शिक्षण के दौरान या उससे अलग)?
- अपने द्वारा किए गए किसी एक प्रयोग के बारे में लिखिए कि आपने यह प्रयोग क्यों किया था। क्या आपके मन में कोई अपेक्षा थी?
- इसे कैसे किया था? क्या परिणाम आपकी अपेक्षा के अनुरूप मिले थे?
- आपके प्रयोग से क्या निष्कर्ष निकला था? विस्तार में लिखिए।

विज्ञान हमें क्या बताता है?

आगे बढ़ने से पहले यह देखते हैं कि विज्ञान का मकसद क्या है। यहाँ हम सिर्फ प्राकृतिक विज्ञान की बात कर रहे हैं, हालाँकि इनमें से कई बातें सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में लागू हो सकती हैं।

प्राकृतिक विज्ञान के मकसद पिछली सदियों में बदलते रहे हैं। आज हम मानते हैं कि विज्ञान का मकसद है कि अपने आसपास की दुनिया का एक विवरण देना और उसके अलग-अलग अवयवों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना। इसके ज़रिए हम इस विश्व की एक तस्वीर निर्मित करते हैं और उसके कामकाज को समझने की कोशिश करते हैं। हमारी कोशिश होती है कि इस विश्व के नियमों का एक खाका तैयार कर पाएँ और यह देख पाएँ कि इसका संचालन किन नियमों के अन्तर्गत होता है।

इन नियमों की मदद से हम यह भी बता सकते हैं कि ऐसी ही परिस्थितियों में अन्य अवलोकन क्या होने की उम्मीद है।

विज्ञान का दूसरा मकसद यह समझाना भी है कि जो भी नियम हम खोजते हैं वे वैसे ही क्यों हैं। यदि दो अवयवों के बीच सम्बन्ध है, तो हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि क्या यह सम्बन्ध संयोगवश ही है या इन दो अवयवों में ऐसी कोई बात है कि इनके बीच सम्बन्ध अनिवार्य है। फिर यह भी देखने की कोशिश करते हैं कि क्या दो अवयवों के बीच सम्बन्ध ऐसा है कि एक के कारण दूसरा घटित होता है या क्या ये दोनों किसी तीसरे अवयव के क्रिया परिणाम हैं।

जब हम प्रकृति के विभिन्न अवयवों, क्रियाओं और घटनाओं के बीच सम्बन्धों का ताना-बाना बनाते हैं तो हम कहते हैं कि हम विश्व का एक मॉडल विकसित कर रहे हैं। यह मॉडल वास्तविकता के जितना निकट हो उतना ही अच्छा

चित्र: रंजित बालमुचु

माना जाता है। ज़ाहिर है विज्ञान लगातार परिवर्तनशील उद्यम है।

इसमें एक साथ कई सिद्धान्त उभर सकते हैं जो विश्व की व्याख्या करने का दावा करते हैं। इनके बीच फैसला करना विज्ञान का एक प्रमुख काम होता है।

जब कोई व्याख्या या एक से अधिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं तो उनके आधार पर भविष्यवाणियाँ करना भी विज्ञान का एक मकसद होता है। ज़ाहिर है अलग-अलग व्याख्याओं के द्वारा अलग-अलग भविष्यवाणियाँ होती हैं। इन भविष्यवाणियों की जाँच करके इनमें से अपेक्षाकृत सही व्याख्या को चुनना विज्ञान में आगे बढ़ने का मुख्य रास्ता है।

प्रयोग की भूमिकाएँ

विज्ञान में प्रयोगों की कई भूमिकाएँ हैं। सबसे पहले तो कुछ अवलोकनों को बेहतर ढंग से समझने के लिए हमें प्रयोग का सहारा लेना पड़ता है। कई बार किसी परिघटना को समझने के लिए उससे सम्बन्धित प्रयोग करते हैं। ऐसा भी होता है कि कुछ घटनाएँ साथ-साथ होती हैं और उनके परस्पर सम्बन्ध के बारे में जानने के लिए प्रयोग करना होते हैं। प्रकृति को समझने की कोशिश में जब कोई नया सिद्धान्त सामने आता है तो हमें यह देखना होता है कि यह सिद्धान्त प्रकृति के बारे में क्या कह रहा है। सिद्धान्तों द्वारा किए गए दावों की जाँच के लिए भी प्रयोग किए जाते हैं। प्रयोगों में हमें बेहतर-से-बेहतर अवलोकन प्राप्त करने के लिए उपकरणों की ज़रूरत पड़ती है। इन उपकरणों के विकास के लिए भी प्रयोग किए जाते हैं। हर प्रयोग करते समय हम एकदम शुरू से तो शुरू नहीं कर सकते। हम जिन चीज़ों के बारे में प्रयोग कर रहे हैं, हमें

उनके बारे में पहले से बहुत कुछ पता होता है। पदार्थों, वस्तुओं वगैरह के बारे में ऐसी जानकारी प्राप्त करने के लिए भी प्रयोग किए जाते हैं।

अर्थात् स्पष्ट है कि प्रकृति की खोजबीन करने और प्रकृति का एक अमूर्त ढाँचा खड़ा करने के काम में अवलोकनों और प्रयोगों की भूमिका है। दरअसल, प्रयोग और कुछ नहीं, विशेष मकसद से अवलोकन करने की एक व्यवस्था ही तो है।

विज्ञान में प्रायोगिक विधि की स्थापना करने वाले फ्रांसिस बेकन के शब्दों में, "हमारे पास कुछ सीधे-सादे अनुभव (अवलोकन) होते हैं; यदि उन्हें वैसे ही स्वीकार किया जाए जैसे वे हैं, तो इसे संयोग कहते हैं, और यदि उनकी मांग की जाए तो वे प्रयोग होते हैं।" (फ्रांसिस बेकन, नोवम ऑर्गेनम, 1620)

यों भी कह सकते हैं कि प्रयोग एक सोची-समझी संरचना है जिसे इस तरह बनाया जाता है कि हम प्रकृति की किसी परिघटना को अलग-थलग करके, नियंत्रित ढंग से, अपनी मर्ज़ी से तोड़-मरोड़कर, परिस्थितियों में हेर-फेर करके उसका अवलोकन कर सकें। तब हम उस परिघटना का अवलोकन विभिन्न उपकरणों के माध्यम से कर पाते हैं और नाप-तौल भी कर सकते हैं। प्रकृति में होने वाली परिघटनाएँ काफी पेचीदा होती हैं और प्रत्येक परिघटना में तमाम किस्म के बल और क्रियाएँ काम करती हैं। प्रयोग करने के पीछे मकसद यह होता है कि हम इन्हें अलग-अलग करके देख पाएँ और अपनी मर्ज़ी से नियंत्रित कर पाएँ।

इस सन्दर्भ में कई लोग मानते हैं कि प्रयोग भी एक किस्म का अवलोकन ही है। उनका मत है कि प्रयोग एक खास किस्म से किए गए अवलोकन ही हैं। प्रयोगों का मकसद मात्र इतना है कि हम प्रकृति के बारे में जो कुछ जानना चाहते हैं, उसे एक विशेष तरीके से जानने की कोशिश करें। प्रयोग में हम उसी परिघटना को कुछ विशेष परिस्थितियों में करके देखते हैं ताकि अवलोकन ज़्यादा स्पष्टता से लिए जा सकें और एक-एक स्थिति के असर को परखा जा सके। प्रयोग से हमें कई बार वे चीज़ें देखने में भी मदद मिलती है जो वैसे हमारी पहुँच से बाहर हैं। जैसे आकाश के अवलोकन के लिए दूरबीन का उपयोग करने से हमारे सामने सौर मण्डल और उससे भी आगे के कई तथ्य उजागर हुए जो वैसे ओझल थे। इसी प्रकार से सूक्ष्मदर्शी तकनीक के विकास ने हमें यथार्थ के उन रूपों से परिचित कराया जो वैसे कभी नज़र न आते। तो पहले यह देखते हैं कि अवलोकन हमें कहाँ तक ले जा सकते हैं और प्रयोगों का पदार्पण किस चरण में होता है।

अपने आसपास के कुछ अवलोकन कीजिए। निम्नलिखित में से कोई एक गतिविधि करके अपने परिणाम लिखिए।

गतिविधि क्रमांक 1

पेड़-पौधों का अवलोकन करना ज़्यादा मुश्किल नहीं है। यहाँ जो गतिविधि सुझाई गई है उसमें हम यह मानकर चल रहे हैं कि कुछ सामान्य परिभाषाएँ आपको पता हैं। वैसे हम शुरू से भी शुरू कर सकते हैं। उम्मीद है कि आप कम-से-कम 10 पौधों का अध्ययन करके अपने अवलोकन अच्छी तरह नोट कर लेंगे। कुछ पौधों के उदाहरण तालिका-1 में दिए गए हैं।

प्रत्येक पौधे के दो अवलोकन कीजिए। पहला पत्तियों का और दूसरा जड़ों का।

पत्तियों में वैसे तो देखने को बहुत कुछ होता है और विविधता भी भरपूर पाई जाती है मगर यहाँ हम पत्ती के एक विशिष्ट गुणधर्म पर ध्यान देंगे। आप जानते ही हैं कि पत्तियों पर कुछ उभरी हुई-सी नसें या शिराएँ दिखाई देती हैं। इन शिराओं को ध्यान से देखेंगे तो इनकी जमावट के दो प्रकार पहचान सकते हैं। पहले प्रकार में ये नसें एक-दूसरे से समान्तर जमी होती हैं और एक-दूसरे को काटती नहीं। इस प्रकार की जमावट को समान्तर शिरा विन्यास कहते हैं। दूसरे प्रकार का विन्यास जाली विन्यास कहलाता है और उसमें ये शिराएँ एक जाली जैसी रचना बनाती हैं।

पहला अवलोकन इसी बात का करना है कि आपके 10 पौधों की पत्तियों में किस तरह का विन्यास है। इसे तालिका में नोट कर लीजिए।

तालिका - 1

क्रमांक	पौधे का नाम	पत्ती में शिरा विन्यास	जड़ का प्रकार
1.	पालक		
2.	घास		
3.	मैथी		
4.	गेहूँ/धान		
....			

दूसरा अवलोकन जड़ों का करना है। जड़ें भी दो प्रकार की होती हैं। एक प्रकार की जड़ें वे होती हैं जहाँ तने के निचले सिरे से एक मुख्य जड़ निकलती है और फिर इसकी शाखाओं के रूप में छोटी-छोटी जड़ें निकलती हैं। इस प्रकार की जड़ों को मूसला जड़ कहते हैं। दूसरी प्रकार की जड़ें वे हैं जिनमें तने के निचले सिरे से कई सारी जड़ें एक ही जगह से निकलती हैं। इन्हें झकड़ा जड़ कहते हैं।

दूसरे अवलोकन में यह देखना है कि उन्हीं 10 पौधों में जड़ें किस-किस प्रकार की हैं। इसे भी तालिका-1 में नोट कर लीजिए।

क्या इस तालिका के आधार पर आप जड़ों के प्रकार और पत्तियों के शिरा विन्यास के आपसी सम्बन्ध के बारे में कोई नियम बना सकते हैं? इस नियम को लिखिए।

अपने नियम की मदद से निम्न-लिखित सवालों के जवाब दीजिएः

1.नीम के पेड़ की जड़ें कैसी होंगी?

2.मूली की पत्तियों का शिरा विन्यास कैसा होगा?

3.नागफनी की जड़ें कैसी होंगी?

उपरोक्त 10 पौधों के बारे में पता कीजिए कि उनके बीज कैसे होते हैं - एक-बीजपत्री या दो-बीजपत्री?

क्या आपके नियम को विस्तार देकर उसमें बीजपत्रों की संख्या की जानकारी को भी शामिल किया जा सकता है? यदि हाँ, तो विस्तृत नियम को लिखिए।

क्या अब आप बता सकते हैं कि चीकू की पत्तियों का शिरा विन्यास और जड़ें कैसी होंगी?

आप देख ही सकते हैं कि यह गतिविधि मूलतः अवलोकनों पर टिकी है। हाँ, यह ज़रूर है कि शायद आपको जड़ों को देखने के लिए थोड़ी खुदाई करनी पड़े।

एक और अवलोकन आधारित आसान-सी गतिविधि करने के बाद हम आगे बढ़ेंगे।

गतिविधि क्रमांक 2

कुछ ऐसे जन्तुओं की सूची बनाइए जिनके बाहरी कान (हमारे जैसे) होते हैं।

अब इन जन्तुओं का ध्यानपूर्वक अवलोकन करके निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. क्या इन सारे जन्तुओं की चमड़ी पर बाल पाए जाते हैं?
2. क्या इनमें से कोई जन्तु ऐसा है जो अण्डे देता हो?
3. क्या इन सभी जन्तुओं में मादा अपने बच्चों को दूध पिलाती है?
4. क्या ऐसे सभी जन्तुओं के सींग होते हैं?
5. क्या चमगादड़ इस समूह का सदस्य है?

उपरोक्त दो गतिविधियों में कुछ उल्लेखनीय बातें थीं। पहली बात तो यह थी कि हमने जन्तुओं, पेड़-पौधों के समूह बनाए। यही काम आप अन्य वस्तुओं के साथ भी कर सकते हैं। समूह बनाने के लिए हमने वस्तुओं के एक-एक गुणधर्म का अध्ययन किया। इसके बाद समूहों की आपस में तुलना करके उनके बीच सम्बन्ध खोजने की कोशिश की।

हमने देखा कि जड़ों के प्रकार, पत्तियों के विन्यास और बीजपत्रों की संख्या के बीच एक सम्बन्ध पाया जाता है। जब हमें यह सम्बन्ध निरपवाद रूप से नज़र आया तो हमने इसे एक नियम का रूप दे दिया। इस नियम के आधार पर हम अगले उदाहरण के बारे में भविष्यवाणी की क्षमता से लैस हो गए हैं।

मगर सवाल यह उठता है कि क्या हमारा नियम सार्वभौमिक है? यानी क्या हम पक्के तौर पर कह सकते हैं कि यह नियम भविष्य में देखे जाने वाले हर मामले पर खरा उतरेगा? ज़रा सोचकर जवाब दीजिए। कितने ऐसे उदाहरण देख लेने के बाद हम कह सकेंगे कि हमारा नियम सार्वभौमिक सत्य है?

कई अवलोकनों के आधार पर सामान्यीकरण करके नियम प्रतिपादित करने के इस तरीके को आगमन कहते हैं। आगमन की यह प्रमुख समस्या है कि ढेर सारे अवलोकनों के बाद भी आप यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि अगला अवलोकन उसी नियम के अनुरूप होगा। इस समस्या की ओर कई दार्शनिकों ने ध्यान दिलाया था जिनमें डेविड ह्यूम प्रमुख थे। बहरहाल, हमने देखा कि अवलोकनों और समूहीकरण की मदद से हम प्रकृति के नियम खोज सकते हैं। इसका अगला कदम आता है इन नियमों की व्याख्या करने का।

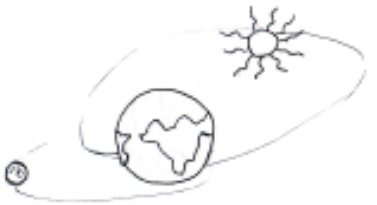

अवलोकन-आधारित दुनिया

प्रकृति का काफी सारा अध्ययन व विश्लेषण तो मात्र अवलोकनों के ज़रिए सम्भव है। विज्ञान के कई महत्वपूर्ण सिद्धान्त महज़ अवलोकनों की देन हैं। इनमें डार्विन का जैव-विकास का सिद्धान्त, सूर्य केन्द्रित विश्व का सिद्धान्त, सजीवों के वर्गीकरण की प्रणाली वगैरह गिनाए जा सकते हैं।

जैसे जैव-विकास की बात को ही लें। काफी समय तक यह माना जाता था कि आज जो भी जीव हमें दिखते हैं वे शुरू से उसी रूप में विद्यमान रहे हैं। यानी एक बार में सारे जीव-रूपों का निर्माण (सृजन) हुआ था और तब से इनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इस मान्यता का आधार क्या था? इसका सीधा-सादा आधार यह था कि मनुष्यों के जीवन काल में या यहाँ तक कि कई पीढ़ियों के जीवन काल में भी हमें इनमें कोई परिवर्तन नहीं दिखता है। कई सदियों तक हम इसी सामान्य अवलोकन के आधार पर एक अचर विश्व की कल्पना करते रहे।

मगर फिर अवलोकनों का दायरा बढ़ा और हमें कई ऐसी चीज़ें नज़र आने लगीं जो पहले नज़र नहीं आती थीं।

आपके ख्याल में वे कौन-सी नई चीज़ें होंगी जो नज़र आने पर हम एक अपरिवर्तनशील विश्व की धारणा पर सवाल खड़े करने लगेंगे? एक सूची बनाइए।

एक तो हमारे अवलोकनों की समयावधि बढ़ी। अवलोकनों के रिकॉर्ड रखे जाने के कारण हमें काफी लम्बे समय की सूचनाएँ एक साथ उपलब्ध हो गईं। इस सूचना भण्डार में हमें ऐसी कई चीज़ों में परिवर्तन नज़र आए जो अल्पावधि के अवलोकनों में उजागर नहीं होते थे।

दूसरी बात यह हुई कि भौगोलिक दृष्टि से भी हमारे अवलोकनों का दायरा विस्तृत हुआ। यह विस्तार न सिर्फ धरती की सतह पर हुआ बल्कि धरती की गहराइयों में हुआ। अर्थात् एक तो लोग लम्बी-लम्बी यात्राएँ करके दूर-दूर के स्थानों पर पहुँचने लगे तथा दूसरी ओर खनन कार्य के चलते पृथ्वी की गहराइयों में भी झाँकने लगे। साथ ही, पेड़-पौधों और पक्षियों के बारे में सुन्दर सचित्र पुस्तकें प्रकाशित होने लगीं। लोगों ने देखा कि इनमें से अधिकांश जीवों का ज़िक्र न तो बाइबल में है, न ही महान प्राचीन दार्शनिकों के ग्रन्थों में। तो यह सवाल उठने लगा कि क्या हम अपनी दुनिया के बारे पर्याप्त जानकारी रखते हैं।

नए-नए स्थानों की यात्रा करने से नए-नए जीव-जन्तु और वनस्पतियाँ हमारे अवलोकन पटल पर उभरने लगे। मगर जब पृथ्वी की गहराइयों में देखा

तो पता चला कि वहाँ कई ऐसे जीव-जन्तुओं के अवशेष संरक्षित हैं जो आजकल दुनिया में नहीं पाए जाते। जीवों के ऐसे संरक्षित अवशेषों को जीवाश्म कहते हैं।

यदि हम यह मानें कि जीवाश्म के रूप में दिखने वाले जीव अतीत में कभी पृथ्वी पर विचरते होंगे, तो अपरिवर्तनशीलता की धारणा पर सवाल खड़े होना स्वाभाविक है। एक बात यह भी देखी गई कि जीवाश्मों में कई ऐसे जीवों का नामो निशान नहीं मिलता जो आज पृथ्वी पर बहुतायत में पाए जाते हैं। यह भी पता चला कि धरती के गर्भ में अलग-अलग गहराइयों पर अलग-अलग किस्म के जीवाश्म मिलते हैं।

इस तरह के तमाम किस्म के अवलोकनों ने हमें यह मानने पर मजबूर कर दिया कि शायद पृथ्वी और उस पर पाए जाने वाले जीव, दोनों परिवर्तनशील हैं। यह परिवर्तन कैसे होता है, इसकी व्याख्या की कोशिश ज़रूरी हो गई।

इसी व्याख्या की कोशिश में फ्रांसीसी जीव वैज्ञानिक ज़्याँ बेप्टिस्ट डी लैमार्क ने 1809 में अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया जो अंगों के उपयोग-अनुपयोग पर आधारित था। उनकी पुस्तक *फिलॉसॉफिक ज़ुऑलॉजिक* में प्रस्तुत लैमार्क का सिद्धान्त चार प्रमुख बातों पर टिका था:

1.सजीव और उनके अंग लगातार साइज़ बदलते रहने की प्रवृत्ति दर्शाते हैं।

2.नए अंग नई ज़रूरतों और चाहतों के परिणामस्वरूप बनते हैं।

3.किसी अंग का उपयोग किया जाए तो वह विकसित होता है और कोई अंग बेकार पड़ा रहे तो उसका क्षय होता जाता है।

4.किसी जीव के जीवन काल में जो नई संरचनाएँ बनती हैं वे उसकी सन्तानों को विरासत में मिलती हैं।

अर्थात् कोई भी जीव अपने पर्यावरण में जीने के लिए खुद को ढालता है। इस प्रयास में वह नए गुण या संरचनाएँ अर्जित करता है या किसी गुण या संरचना में इज़ाफा करता है और ये गुण व संरचनाएँ अगली पीढ़ी को प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार से क्रमशः जीवों का विकास होता है।

मगर चार्ल्स डार्विन ने जैव-विकास की प्रक्रिया की एक सर्वथा भिन्न धारणा पेश की।

जीवजगत की उत्पत्ति और उसके बाद की उसकी यात्रा के बारे में आज हमारे पास गहरी समझ है। इस समझ को पुष्ट करने में सबसे बड़ा योगदान दिया उन्नीसवीं शताब्दी के चार्ल्स डार्विन नामक अँग्रेज़ वैज्ञानिक ने। बीगल नामक शोध-नौका पर यात्रा के दौरान डार्विन को जीवजगत की असीमित विविधता समझ में आने लगी, भिन्न-भिन्न महाद्वीपों और टापुओं पर उसका विस्तृत स्वरूप दिखाई देने

लगा, और उनके मन में कई सवाल उठने लगे। यदि ईश्वर ने सब प्रजातियों को जहाँ हैं वहीं बनाया है, तो दक्षिण अमेरिका महाद्वीप पर पाई जाने वाली प्रजातियों और उसके समीप स्थित टापुओं पर पाई जाने वाली प्रजातियों में इतनी समानता क्यों है? और अफ्रीका महाद्वीप के पास स्थित टापुओं की प्रजातियाँ इतनी भिन्न क्यों हैं? मीठे पानी के भण्डार वाले समुद्री टापुओं पर ऐसी छिपकलियाँ दिखाई देती हैं जो समुद्र के पानी में तैर सकती हैं, फिर मीठे पानी में आराम से रह सकने वाले पतली त्वचा वाले मेंढक वहाँ क्यों नहीं हैं? डार्विन को लगने लगा कि सच्चाई यह है कि बड़े महाद्वीपों पर पहले प्रजातियों का विकास हुआ, फिर वे संयोगवश या दुर्घटनावश दूरस्थ टापुओं पर पहुँच गईं, और वे वहाँ की परिस्थिति के अनुरूप ढल गईं। इन सब परिवर्तनों का मूल आधार है सब प्रजातियों में पाया जाने वाला विविधता का भण्डार। इस प्राकृतिक विविधता से ही कालान्तर में नए-नए रूपों वाली, शरीर रचना वाली और प्रकृति में नई भूमिका निभा सकने वाली प्रजातियाँ उपजीं।

डार्विन ने प्राकृतिक वरण (नेचुरल सिलेक्शन) की अवधारणा को और अधिक विस्तार देते हुए सुझाव दिया कि सब जीवधारी अपने आपको सुरक्षित रखते हुए लगातार यह प्रयास करते रहते हैं कि उनकी सन्तानें संसार में सफलतापूर्वक जीएँ। एक ही जीव की सन्तानें एक ही साँचे में ढली हुईं बिलकुल एक समान नहीं होतीं। प्रकृति की परिस्थितियों के अनुसार कुछ को फायदा मिलता है, कुछ को नुकसान होता है। जिन्हें फायदा मिलता है अगली पीढ़ी में उनकी ज़्यादा सन्तानें होती हैं। यदि जिस गुण की वजह से उन्हें फायदा मिला था, वह अगली पीढ़ी तक पहुँचने योग्य (यानी वंशानुगत) है तो अगली पीढ़ी में वह गुण भी ज़्यादा सदस्यों में होगा। यानी डार्विन का मत था कि विकास के दो आधार हैं - पहला सजीवों की किसी भी आबादी में भरपूर विविधता और प्रकृति की परिस्थितियों के अनुसार व उसके दबाव के अन्तर्गत इस विविधता में से चयन। इसे प्राकृतिक चयन या वरण का सिद्धान्त कहते हैं।

तो उन्नीसवीं सदी में हमारे सामने जैव-विकास के दो प्रमुख सिद्धान्त थे और दोनों महज़ अवलोकनों व अवलोकनों की तर्कसंगत व्याख्या पर टिके थे।

कौन सही - लैमार्क या डार्विन?

इनके बीच फैसला कैसे हो? किस तरह के अवलोकन हमें यह तय करने में मदद करेंगे कि लैमार्क ज़्यादा सत्य के करीब हैं या डार्विन?

इससे पहले कि हम इस सवाल के जवाब में घुसें, एक सवाल और। डार्विन ने अपना जैव-विकास का सिद्धान्त मूलतः इस बात पर विकसित किया था कि सजीवों में कुदरती तौर पर

चित्रः रंजित बालमुचु

विविधता पाई जाती है। एक ही प्रजाति के कोई दो पेड़ एक जैसे नहीं होते, कोई दो पक्षी एक जैसे नहीं होते।

यहाँ अवलोकन का आशय स्पष्ट करना ज़रूरी है। अवलोकन से आशय सिर्फ यह नहीं है कि आपने आँख-कान खुले रखे और देख-सुन लिया। या गंध का एहसास कर लिया या छूकर देख लिया। अवलोकन में ज़्यादा व्यवस्थित रूप से सूचनाएँ एकत्रित करना भी शामिल है और उपकरणों का उपयोग भी शामिल है। जैसे नाप-तौल करना अवलोकन का अंग हो सकता है। जब हम कहते हैं कि हम महज़ अवलोकन कर रहे हैं, तो मतलब इतना ही होता है कि हम उस परिदृश्य में कोई हस्तक्षेप नहीं कर रहे हैं। हाँ, अवलोकन की क्रिया की वजह से थोड़ा-बहुत हस्तक्षेप तो हो ही जाता है मगर हम जानबूझकर ऐसा कोई काम नहीं करते जिसकी वजह से हम उस क्रिया या घटना में कोई फेरबदल कर दें।

आप भी एक अध्ययन कीजिए। किसी एक पेड़ की पत्तियों को ध्यान से देखिए। क्या आप कोई भी दो पत्ती ऐसी खोज पाए जो हूबहू एक जैसी हों? यदि मिलती हैं, तो उन्हें और ध्यान से देखकर पक्का कीजिए कि वे हूबहू एक समान हैं। आप चाहें तो यही अध्ययन किसी भी सजीव पर दोहरा सकते हैं - जैसे टिड्डे, फूल या बीज। अपने अवलोकनों को विस्तार में लिखकर बताइए कि आपको किस तरह की विविधता देखने को मिलती है।

अपने आठ-दस साथियों के साथ मिलकर भी विविधता पर एक अध्ययन कर सकते हैं। इसमें आपको थोड़ी नपाई भी करनी होगी।

अपने साथियों की तर्जनी उँगली की तुलना कीजिए। तुलना के लिए आप उँगली की कुल लम्बाई, पहली कटान पर उँगली की परिधि के नाप तथा पहली और दूसरी कटान के बीच की दूरी, इन तीन नापों का उपयोग कर सकते हैं। अपने आँकड़े तालिका -2 में भरें।

क्या आपकी उँगली अनोखी है? क्या हर व्यक्ति की उँगली अनोखी है? क्या इस गतिविधि के आधार पर यह कहा जा

तालिका - 2

क्रमांक	साथी का नाम	तर्जनी उँगली की लम्बाई	पहली कटान पर परिधि	पहली कटान से दूसरी कटान की दूरी
1. 2. 3.				

सकता है कि दुनिया के किन्हीं भी दो व्यक्तियों की तर्जनी उंगली एक-सी नहीं होंगी? फिंगर प्रिंट सम्बन्धी अपनी जानकारी के आधार पर उत्तर दीजिए।

उंगलियों की तुलना के लिए आपने नपाई का सहारा लिया। यह एक मायने में जैव विविधता की एक बानगी है। वास्तव में डार्विन के प्राकृतिक चयन के सिद्धान्त के विकास में जैव विविधता के अध्ययन का काफी महत्व रहा था। खास तौर से उनके द्वारा अर्जेंटीना के समीप गैलापेगोस द्वीपसमूह के अलग-अलग द्वीपों पर जन्तुओं के अध्ययन ने उनके विचारों को एक नई दिशा प्रदान की थी। यहाँ के विभिन्न द्वीपों पर फिंच नामक पक्षी पाए जाते हैं। डार्विन ने इन फिंच पक्षियों का काफी गहराई से अध्ययन किया था। फिंच पक्षियों के अवलोकनों के दौरान डार्विन ने उनकी चोंच पर भी ध्यान दिया था और उनके आकार को ध्यान से देखने के अलावा उनकी नपाई भी की थी।

चित्र: रंजित बालमुचु

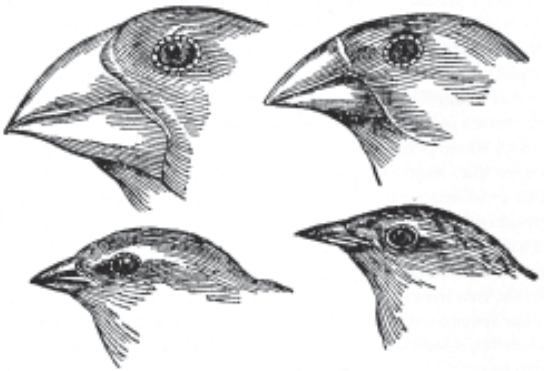

उन्होंने पाया कि अलग-अलग पक्षी अलग-अलग किस्म के बीज खाने में ज़्यादा निपुण हैं। इस तरह के कई अवलोकन उन्होंने किए थे।

चूँकि विविधता है, इसलिए इनके बीच चयन हो सकता है। अलबत्ता, जैव-विकास के लिए महत्वपूर्ण चयन तो उसी विविधता में से होगा जो आनुवंशिक है यानी जो अगली पीढ़ी को हस्तान्तरण के योग्य है। मगर डार्विन को यह पता नहीं था कि यह विविधता पैदा कैसे होती है। यानी वे यह नहीं जानते थे कि जैव-विकास की प्रक्रिया का कच्चा माल (विविधता) कहाँ से व कैसे अस्तित्व में आता है। वे तो यह भी नहीं जानते थे कि माता-पिता के गुण सन्तानों को कैसे मिलते हैं। उन्होंने इसके बारे में एक अटकल लगाई थी।

डार्विन व उस समय के कई अन्य वैज्ञानिकों का विचार यह था कि माता और पिता, दोनों के प्रत्येक अंग से कुछ रस निकलकर सन्तान में पहुँचता है। कुछ लोग मानते थे कि हर अंग का एक सूक्ष्म रूप जाकर शुक्राणु को मिलता है। सन्तान में इस रस के मिले-जुले प्रभाव से गुण उत्पन्न होते हैं। मगर दिक्कत यह है कि यदि यह धारणा सही है तो हर पीढ़ी में गुणों का मिश्रण होता जाएगा और कुछ ही पीढ़ियों में सारी विविधता समाप्त हो जाएगी। जैसे हम देखते हैं कि मनुष्यों में चमड़ी के रंग में बहुत विविधता है। यदि हम यह मान लें कि मनुष्य की चमड़ी का रंग किसी तरल के द्वारा निर्धारित होता है और इस तरल का अंश सन्तान को माता-पिता, दोनों से मिलता है और सन्तान की चमड़ी का रंग इस मिश्रित रस के प्रभाव से तय होता है, तो हर पीढ़ी में चमड़ी का रंग मिश्रित होता जाएगा और जल्दी ही सारे मनुष्यों की चमड़ी का रंग एक जैसा हो जाएगा; विविधता एकरूपता में बदल जाएगी। यह प्रक्रिया तो डार्विन के अपने सिद्धान्त के खिलाफ थी क्योंकि जिस विविधता के आधार पर प्राकृतिक चयन होना प्रस्तावित है, वही समाप्त होती जा रही है।

जैव-विकास की ओर लौटें। विविधता का पैदा होना और गुणों का अगली पीढ़ी में पहुँचना, ये दो सवाल हल किए बिना जैव-विकास के उक्त दो सिद्धान्तों के बीच फैसला करना मुश्किल हो जाता है। समस्या यह थी कि डार्विन ने यह तो स्पष्ट कर दिया कि जीवजगत में उपस्थित विविधता में से चयन के द्वारा ही विकास होता है। मगर वे यह नहीं बता पाए कि विविधता पैदा कैसे होती है। वे यह भी स्पष्ट नहीं कर पाए कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुणों का हस्तान्तरण कैसे होता है। दूसरी ओर लैमार्क कह रहे थे कि कोई भी जीव जो गुण अपने जीवन में अर्जित करता है वे उसकी सन्तानों को मिल जाते हैं। उन्हें भी यह स्पष्ट नहीं था कि गुण अगली पीढ़ी को कैसे मिलते हैं। तो इन दो सिद्धान्तों के बीच फैसले के लिए यह समझना ज़रूरी था कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुण कैसे पहुँचते हैं, और जीवनकाल में अर्जित गुणों का हस्तान्तरण सम्भव है या नहीं।

अगले भाग में हम इसी सवाल से शुरू करके विज्ञान में प्रयोगों के स्थान की बात को आगे बढ़ाएँगे।

(...जारी)

सुशील जोशीः एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सभी चित्रः बाल वैज्ञानिक पुस्तक, कक्षा-6।

✠✠✠✠✠✠✠✠